International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030
Impact Factor: RJIF 5.24
www.advancedjournal.com
Volume 3; Issue 1; January 2018; Page No. 677-680

नगरीय निकायों का उद्विकास, (प्राचीन भारत के विशेष सन्दर्भ में)

डॉ. मधुसूदन कलावटिया
व्याख्याता, राजनीति विज्ञान विभाग, एस.एस.जैन सुबोध स्नातकोत्तर, स्वायत्तशासी महाविद्यालय, जयपुर, राजस्थान, भारत।

परिचय

जग में कोई बड़ा न कोई छोटा भ्राता
ईश्वर सब का पिता और धरती है माता।

ईश्वर ने अपनी सन्तति को स्व–रक्षा प्रवृति प्रदान की है। इसके अनुसार क्रमशः स्वयं की रक्षा, वंश की रक्षा, समाज की रक्षा, देश की रक्षा व विश्व की रक्षा है। उपरोक्त की पूर्ती हेतु ईश्वर ने मानव को प्रकृति प्रदत्त विपुल साधन दिये हैं। इन साधनों के विदोहन के लिये परमात्मा ने ट्रस्टी के रूप में क्रमशः प्रजापति, मनु तथा उनकी संतान बनायी। समय–समय पर इनके नामों में परिर्वतन होता गया। जैसे प्राचीन काल में राजा और आधुनिक काल में सरकार। इन ट्रस्टियों पर ट्रस्ट के साधनों के विदोहन के अधिकार के साथ–साथ ट्रस्ट के प्रबंधन एव संचालन का दायित्व भी सौंपा गया। इसी कारण राष्ट्रीयकवि मैथलीशरण गुप्त ने साकेत ग्रन्थ में लिखा है।

शासन सब पर है, इसे कोई न भुलें,
शासक पर भी, वह भी न भूल कर फूले।

उपरोक्त बात को ध्यान में रख कर परमपिता परमेश्वर के पुत्रों ने विवेक के आधार पर तय किया कि शासन की प्रणाली ऐसी बनायी जाये कि उसमें उच्चत्तम पद सोपान से निम्नतम पद सोपान तक सब की भागीदारी हो। इस प्रणाली का नाम रखा गया ''सात्ता का विकेन्द्रिकरण''। भारत में इसका प्रारूप बना केन्द्रिय स्तर पर लोकसभा एवं राज्यसभा, राज्य स्तर पर विधानसभा, जिला स्तर पर प्रथम/द्वितीय श्रेणी की नगरपालिका, ग्रामीण स्तर पर नगरपालिका बोर्ड एवं पंचायत समिति।

वेद, आरण्यक, ब्राह्मण, उपनिषद्, वाल्मिकी रामायण व महाभारत आदि प्राचीन ग्रन्थों के अनुशीलन से धर्म की व्यापक अवधारणा प्रकट होती है। 'धर्म' के अर्न्तगत सभी मानव सम्बन्ध समामेलित हैं। प्राचीन राजनीतिक चिन्तन के अनुसार धर्म शासकों का शासक है। धर्म को राजा के अधीन नहीं बल्कि राजा को धर्म के अधीन रखा गया हैं। तद्नुसार धर्म में सामाजिक एवं राजनैतिक दोनों पहलू आ जाते है।[1] राज–व्यवस्था का प्रमुख उद्देश्य नगर की व्यवस्था को सुचारू रूप से बनाये रखना है। वैदिक कालीन विश्लेषण के अनुसार राजा निरंकुश नहीं माना जाता था। राजा राज–व्यवस्था को प्रजा के कल्याण में संचालित करता था।

ऋग्वेद के अन्तिम सूक्त में समन्वयन के लिये प्रार्थना की गयी है। जिसका आशय है कि सब मानव स्थान–विशेष पर एकत्र हो कर, समान उद्देश्य से एकमत हो कर, समान रूप से, सर्व कल्याण के लिये प्रार्थना करें। राज्याभिषेक के साथ राजा द्वारा ली गयी शपथ का प्रजा द्वारा विरोध करने पर वह क्षीण हो जाये। यह इस बात का द्योतक है कि राजा की सम्पूर्ण शक्ति प्रजा में निहित थी। वैदिककाल में भौतिक समृद्धि, आध्यात्मिक चेतना के साथ–ही–साथ सामाजिक–राजनैतिक चिन्तन का भी उल्लेख है।

अथर्ववेद के अनुसार जन–शक्ति ने उभर कर ग्राम सभा का रूप ले लिया। तत्कालिन ग्राम सभाऐं आकार में छोटी एवं बिखरी हुई थी। परिणामस्वरूप जन–समितियाँ बनायी गयी, जो अपेक्षाकृत आकार में विस्तृत थीं। इनके निर्णयन के क्रियान्वयन हेतु एक प्रतिनिधि सभा गठित की गयी। प्रतिनिधि सभा जनशक्ति का द्योतक थीं। ग्राम सभा अन्य कार्यों के अतिरिक्त गाँव, वन एवं मातृभूमि की की रक्षा करती थीं। वैदिक युग के नगरो का विशेष स्थान नहीं था। इस समय ग्रामीण शासन ही महत्वपूर्ण था। ग्रामीण लोग ग्राम पंचायतें संगठित करते थे। ये पंचायतें प्रशासनिक एवं न्यायिक कार्यों का संचालन करती थी। शतपथ ब्राह्मण में उल्लेख है कि 'नियम' का स्वामी वरूण ही राजा की नियुक्ति करता है। यहाँ पर नियम से तात्पर्य है 'न्याय'।

उत्तरवैदिक काल में समय बितने के साथ–साथ ग्राम सभाओं में निखार आया। ग्राम का मुखिया 'ग्रामणी' कहलाता था। धर्म ग्रन्थों में प्रतिनिधि सभा को सशक्त बनाने के उद्देश्य से उसके नियम, उप–नियमों को लिपिबद्ध कर दिया गया। वाल्मिकी रामायण के अनुसार प्रशासन 'पुर' तथा 'जनपद' दो भागों में विभक्त था। जनपद में ग्राम शामिल थे। इनके निवासी 'जानपदा' कहनाते थे। रामायण में ग्राम, महाग्राम एवं घोष का उल्लेख भी मिलता है। ग्राम के निकटवर्ती नगर 'पट्टन' कहलाते थे। ये जानपदों के लिये मण्डी का काम करते थे। रामायण में 'श्रेणी' तथा 'नैगम' जैसी संस्थाओं का उल्लेख है।[2] इसी प्रकार वाल्मीकी कृत रामायण में 'प्रधान' एवं 'वृद्धजन' की कार्य प्रणाली का भी संक्षिप्त उल्लेख मिलता है।[3] इनका विस्तृत विवरण उपलब्ध नहीं है।

श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदास जी के द्वारा विरचित श्रीरामचरित मानस (अयोध्याकाण्ड, 258) में भी लोकमत की पुष्टि की गयी है :

करब साधुमत लोकमत नृपनय निगम निचोरी।

अर्थात् साधुमत, लोकमत,राजनीति और वेदों का निचोड़ (सार) निकाल कर वैसा ही (उसी के अनुसार) कार्य कीजिए।

''सभा आइ मंत्रिन्ह तेहिं बुझा।
करब कवन विधि रिपु सैं जूझा।।''

अर्थात् रावण ने सभा में आकर मंत्रियों से पूछा कि शत्रु के साथ किस प्रकार से युद्ध करना होगा। (लंकाकाण्ड–7/7)

महाभारत के आदि पर्व में ग्राममुखिया का भी वर्णन है। सम्भवतः यह गाँवं की जनता का प्रतिनिधि था। महाभारत के सभा पर्व में ग्राम पंचायत का भी लेख मिलता है। परन्तु इस बात का

स्पष्टीकरण नहीं मिलता कि पंचो का चुनाव जनता करती थी या वे राजा द्वारा मनोनीत होते थे। इसी तरह निगम व उनके प्रधानों का भी विवरण मिलता है।[4]

महाभारत (शान्ति पर्व 92–93) में महर्षि नामदेव ने राजा वसुमना को प्रदत्त उपदेश के अनुसार राजा को चाहिये की वह असमय में कर लगाकर धन संग्रह की चेष्टा करे। कोई अप्रिय कार्य हो जाने पर चिन्ता की आग में न जले और प्रिय कार्य हो जाने पर अत्यन्त हर्षित न हो।[5]

महाभारत शान्ति पर्व काल में प्रशासन में सब से निम्न इकाई ग्राम थी। इसके ऊपर क्रमशः दस, बीस, सौ हजार ग्राम समुहों की ईकाईयाँ होती थी। ग्राम शासन का प्रमुख अधिकारी 'ग्रामिक' था। अपने ग्राम के निवासियों की कठिनाईयों व समस्याओं की सूचना वह अपने से ऊपर वाले दस ग्रामा अधिकारी (दशप) को पहुँचाता था। इसी प्रकार दशप ग्राम अधिकारी आरोह के क्रम में बीस ग्रामा अधिकारी (विशंत्याधिप) को और वह शत ग्रामा अधिकारी (ग्रामपाल) को पहुँचाता था। इससे ऊपर सौ ग्रामा अधिकारी अपने क्षेत्र की सूचनायें एक हजार ग्रामा अधिकारी (सहस्र ग्रामपति) को संप्रेक्षित करते थे। इस प्रकार अधीनस्थ अधिकारी पद सोपान के अन्तर्गत अपने से ऊपर वाले अधिकारी के आदेशों व निर्देशों के अनुसार शासन करते थे। इनके कार्यो में स्थानीय कर संग्रहण तथा अपने क्षेत्र की सुरक्षा करना सम्मिलित था।

ग्रामों के अतिरिक्त राज्य में छोटे–बड़े नगर भी थे। इनके शासन अधिकारी को 'सर्वाथ चिन्तक' कह कर सम्बोधित किया जाता था। वह अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के कार्य–कलापों का निरीक्षण स्वयं तो करता ही था, साथ–ही–साथ इस कार्य में अपने गुप्तचरों की सेवाओ का लाभ भी लेता था। अधीनस्थ कर्मचारियों एवं गुप्तचरों के उत्पीड़न एवं अन्याय से प्रजाजनो की रक्षा करना भी उसका दायित्व था। शान्ति पर्व में उल्लेख है कि उपरोक्त प्रादेशिक अधिकारी सचिव के मार्गदर्शन में कार्य का निषपादन करते थे।

मनु स्मृति (ईसा से 900 से 600 वर्ष पूर्व) में राजा के प्रशासन हेतु सात पद–सोपानों का वर्णन मिलता है। अवरोह के क्रम में ये निम्न प्रकार थे–स्वामी (राजा), मन्त्री, पुर(परकोटा/राजधानी), राज्य (राज्य की भूमि तथा उसमें निवास करने वाली जनता), कोष, दण्ड (सेना) एवं मित्र (राज्यों के अन्य राज्यों से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध)। उपरोक्त पद सोपान में चतुर्थ स्थान पर राज्य शब्द का उल्लेख किया गया है। यह शब्द अनेकों स्थानों पर जनपदों के नाम से भी जाना जाता था। स्पष्ट है कि मनु स्मृति के काल में भी नगरपालिकाओं का संगठन विद्यमान था।

मनु स्मृति में शक्तियों के विकेन्द्रीकरण हेतु संस्थागत नियंत्रण की बात कही गयी है। मनु ने राष्ट्र के प्रशासन के लिये उसका छोटी ईकाईयों में विभाजन एवं शासकीय शक्ति का विकेन्द्रीकरण आवश्यक माना है।

स्थानीय प्रशासन के संन्दर्भ में शासक को असीमित अधिकार नहीं दिये गये हैं। मनु की मान्यता है कि शासक की शक्तियों एवं कार्यो के विकेन्द्रीकरण के माध्यम से शासक की निरंकुशता एवं स्वेछाचारिता पर प्रभावी अंकुश रखा जा सकता है। मनु स्मृति में मन्त्री परिषद् का भी उल्लेख किया गया है। मन्त्री परिषद् सत्ता के विकेन्द्रीकरण को लक्षित करती है। मनु ने व्यावहारिक प्रशासनिक व्यवस्था के अन्तर्गत उललेख करते हुये नगरों के प्रशासन के वर्णन में प्रत्येक नगर में न्याय, पुलिस और प्रशासन आदि सभी कार्यों पर विचार करने वाले एक अधिकारी की नियुक्ति को आवश्यक बताया है। मनु के प्रशासनिक व्यवस्था के अन्तर्गत 'स्थानीय संस्थाओं' के महत्व को भी स्वीकार किया गया है तथा स्थानीय विषयों का भार इन्हीं संस्थाओं को सौंपने का निर्देश दिया है।

ग्रामीण प्रशासन के अन्तर्गत राजा दो, तीन, पांच और गाँवो के बीच अपनी राज–व्यवस्था स्थापित करें तथा इन क्षेत्रों में शान्ति और व्यवस्था बनाये रखने के लिये योग्य कर्मचारी नियुक्त करें। इन र्काचारियों के द्वारा कर–वसूली का कार्य और अपने क्षेत्र में होने वाली दैनिक घटनाओं–अपराधों आदि की रिपोर्ट ऊपर के अधिकारियों को देने का कार्य किया जाये। गाँवो के अधिकारियों के सभी कार्यो की देखभाल करने के लिये एक पृथक मन्त्री होना आवश्यक है। इस व्यवस्था से राजा को राज्य में होने वाली सभी घटनाओं की सूचनायें मिलती रहेगी और वह अपना प्रभावी नियन्त्रण स्थापित रख सकेगा।

कानून निमार्ण के लिये एक परिषद की व्यवस्था के अतिरिक्त जनता अपनी संधीय संस्थाओं द्वारा स्वयं अपने नियम बनाने हेतु स्वतन्त्र थी। कुल, जाति, श्रेणी और जनपद इसी प्रकार की संधीय संस्थायें थी। इन स्वायत्त संस्थाओं द्वारा निर्मित नियमों पर राजा अपनी स्वीकृति की छाप लगाता और पालन करवाता था।

प्राचीन भारत के राजनैतिक चिन्तन में जिन व्यक्तियों को बहुत अधिक सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त है। उनमें एक नाम निश्चित रूप से शुक्राचार्य (11वीं/12वीं/14वीं शताब्दी) का है। जिन्हें शुक्र के नाम से ख्याति प्राप्त है। दण्डी द्वारा लिखित 'दशकुमार चरित्रम्' नामक पुस्तक में राजनीति शास्त्रकारों के नामों में सर्वप्रथम नाम शुक्राचार्य का है।[6] शुक्राचार्य (शुक्र) के नीतिशास्त्र के अनुसार राजा को स्वयं राज्य के समस्त कार्यो को करना चाहिये। राजा को स्वयं ग्रामों, पुरों (नगरों) तथा देशों (जिलों तथा प्रान्तों) का निरीक्षण करना चाहिये। शुक्र ने धन के व्यय को प्रतिशत के रूप में छः भागो में बांटा है। इसमें नागरिक प्रशासन के लिये 8.33 प्रतिशत का अंश निर्धारित किया है।[7]

शुक्र ने स्थानीय प्रशासन का भी संक्षिप्त रूप से जिक्र किया है। उनके अनुसार जिस व्यक्ति को राजा 10 गाँवों का अधिकार देता है, वह 'नायक' कहलाता है। जो 100 गाँवों का अधिपति होता है, वह 'सामन्त' कहलाता है। एक हजार गाँवों का अधिकार देकर जिस भृत को सामन्त के ही बराबर ही वेतन देकर नियुक्त किया जाता है, वह 'अनुसामन्त' कहलाता है। वह व्यक्ति जो दस हजार गाँवों का 'कर' ग्रहण करता है, उसे 'आशापालन' कहते हैं। जिसकी लम्बाई–चौड़ाई का घेरा एक कोष हो और एक हजार राजकीय 'कर' देता हो, वह ग्राम कहलाता है। प्रत्येक ग्राम में भूमि–कर एकत्रित करने वाला राजा द्वारा नियुक्त 'ग्रामपति' होता है। जितना देश जिस राजा के अधीन होता है, उतना प्रदेश उसका 'राष्ट्र' कहलाता है। स्थानीय प्रशासन की उपरोक्त व्यवस्था के आधार पर शुक्राचार्य ने सत्ता और व्यवस्था के विकेन्द्रीकरण का सुझाव दिया है।[8]

बृहस्पति के अनुसार राजा को विषम परिस्थिति पैदा होने पर जनमत का पालन करना चाहिये, चाहे वह धर्म के विरूद्ध हो।[9] जातक कथाओं में बुद्ध काल में सुस्थापित पंचायत तन्त्र का वर्णन मिलता है। इस काल में ग्राम सभा के प्रधान को 'भोजक' कहा जाता था। जिसका निर्वाचन ग्रामवासियों द्वारा किया जाता था। सभाओं में 'ग्राम भोजक' के साथ गांव के वृद्धजन तथा अधिकांश ग्रामीण भाग लेते थे, जिनका निर्णयों कों प्रभावित करने में महत्वपूर्ण योगदान होता था।

आचार्य विष्णुगुप्त कौटिल्य का अर्थशास्त्र लगभग 400 ई.पू. का माना जाता है। कौटिल्य ने राज्य प्रशासन का विशद् विवेचन किया है। राज्य–प्रशासन का कार्य विशेष योग्यता रखने वाले व्यक्तियों के द्वारा सम्पादित किया जाना चाहिये। उच्च स्तरीय अधिकारियों को अधिनस्थों के सदाचरण का ध्यान रखना चाहिये। कौटिल्य ने राजा को ऐसे गाँव की रचना का सुझाव दिया, जिसमे कम से कम 100

परिवार तथा अधिक से अधिक 500 परिवार रहते हों। जिसमे गाँवों के संगठन की व्यवस्था इस प्रकार हो कि प्रत्येक आठ सौ गाँवों के केन्द्र में एक 'स्थानिक', चार सौ गाँवों के केन्द्र में एक 'द्रोणमुख', दो सौ गाँवों के केन्द्र में एक 'स्वार्वटिक' तथा 10 गाँवों के केन्द्र में एक 'संग्रम' नामक अधिकारी नियुक्त हो।[10]

कौटिल्य ने एक गाँव के मुखिया को 'ग्रामवृद्ध', पांच गाँवों के मुखिया को 'पंचग्रामी' तथा दस गाँवों के मुखिया को 'दशग्रामी' कहा है। इससे संकेत मिलता है कि उस काल में लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण अथवा पंचायती व्यवस्था को सुसंगठित रूप से रखा जाता था। ग्राम पंचायतों की स्थानीय शासन एवं न्याय व्यवस्था में भूमिका का उल्लेख करते हुये लिखा है कि स्थानीयविवादों का निर्णय ग्राम वृद्धों (मुखिया वर्ग) एवं सामंतो द्वारा किया जाता था।[11]

कौटिल्य ने नगर के लिये 'पुर' शब्द का प्रयोग किया है। पुर के प्रधान अधीक्षक को 'नागरिक' नाम से सम्बोधित किया गया है। नागरिक को नगर की सम्पूर्ण कानून एवं व्यवस्था तथा प्रशासनिक कार्यों के लिये उत्तरदायी माना गया है। नगर को प्रशासनिक दृष्टिकोण से कई भागों में विभक्त किया गया है। नगर के प्रत्येक एक/चौथाई भाग को 'स्थानिक' नाम के अधिकारी के अधीन रखा गया है तथा प्रत्येक 10, 20 एवं 40 परिवारों पर एक 'गोप' की नियुक्ति की व्यवस्था की गई है। जिसका कार्य न केवल इन परिवारों के स्त्री व पुरूषों की जाति, गोत्र, नाम तथा व्यवसाय की जानकारी रखना था अपितु उनकी आय एवं व्यय की जानकारी रखना भी था।[12] उपरोक्त व्यवस्था प्रायः सम्राट के हस्तक्षेप से मुक्त रहती थी।

चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन काल में शासन की विकेन्द्रीकरण की नीति को अपनाया गया। तत्कालीन यूनानी राजदूत मेगस्थनीज के वर्णन के अनुसार इस काल में सुगम प्रशासन को ध्यान में रख कर प्रान्तों को छः पदसोपानों में बांटा गया। जिले के प्रमुख को स्थानिक कहा जाता था। इसी प्रकार ग्राम के अधिकारी को 'ग्रामीक' कहते थे। पांच गाँवों के समुहों अथवा दस गांवों के समुहों के अधिकारी को 'गोप'नाम से पुकारते थे।

इस काल में नगर का सर्वोच्च अधिकारी 'नागरिक' नाम से जाना जाता था। वह अपनी प्राधिकारिता की क्रियान्विति में गोप एवं स्थानिकों की सहायता भी लेता था। मेगस्थनीज के अनुसार पाटलिपुत्र नगर का कार्यभार पांच–पांच सदस्यों की छः समितियों में बांटा हुआ था। सातवाहन शासन काल (ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी) में नगरों एवं गाँवों में स्थानीय राजनीतिक संस्थायें होती थी। तत्कालीन भारत के पश्चिमोत्तर भाग में कुषाण व अवन्ति के 'महाक्षत्रयों' तथा गुप्त साम्राज्य के बीच में 'भद्रगण' से लेकर 'खरपरिक गण' तक छोटे–छोटे गणराज्य मौजूद थे।[13] मेगस्थनीज के लेखों से यह स्पष्ट होता है कि उस समय की मौर्य शासन व्यवस्था में ग्राम सभा अथवा ग्राम संघ होते थे।

पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने उल्लेख किया है कि चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन काल में विस्तृत नौकरशाही की संरचना मौजूद थी। कृषि पर अनेकों प्रकार के कठोर नियन्त्रण लगे हुये थे। खाद्य पदार्थों, मण्डियों, कारखानों, कसाईखानों, पशुओं की नस्लकशी, वेश्याओं, शिकार, शराब–खानों पर अनेकों बंदिशें लगी हुयी थी। माप एवं तोल सब जगहों के लिये प्रमाणित कर दिये गये थे। खाने की वस्तुओं में मिलावट करने वालों को कठोर दण्ड दिया जाता था। व्यापारिक एवं धार्मिककृत्यों पर 'कर' लगा हुआ था। यदि अमीर लोग गबन करते थे या कोमी संकटो से फायदा उठाते थे, तो उनकी जायदाद जब्त कर ली जाती थी। सरकार की तरफ से विधवाओं, यतीमों, बीमारों, कमजोरों कों मदद दी जाती थी। अकाल से जनता को बचाने कर जिम्मेदारी शासन की होती थी।[14]

गुप्त काल में केन्द्रीय प्रशासन के संचालन के लिये अनेक विभाग बने हुये थे। इनके अध्यक्ष उच्च पदाधिकारी होते थे। प्रशासनिक सुसंचालन के उद्देश्य से गुप्त साम्राज्य को अनेकों प्रान्तों में बांटा गया था। प्रत्येक प्रान्त को 'भुक्ति', 'देश', 'भोग' आदि नामों से जाना जाता था। प्रत्येक भुक्ति अनेक 'विषयो' में विभक्त था। 'विषय' आधुनिक जनपद के समान होता था और विषय का सर्वोच्च अधिकारी 'विषयपति' के नाम से जाना जाता था। प्रत्येक विषय के अन्तर्गत अनेक नगर होते थे तथा नगर का अधिकारी 'नगरपति' कहलाता था।

नगर की व्यवस्था हेतु एक परिषद होती थी, जो आधुनिक नगरपालिका के समान थी। प्रशासन की न्यूनतम ईकाई ग्राम थी। प्रत्येक नगर अनेक ग्रामों में विभाजित था। प्रत्येक ग्राम के अधिकारी को 'ग्रामिक' कहा जाता था तथा ग्रामिक की सहायता हेतु एक समिति का निर्माण किया जाता था, जिसे ग्राम सभा के नाम से जाना जाता था। ग्राम सभा का मुख्य कार्य मुकदमों का निर्णय सुनाना, भूमि की सीमा का निर्धारण करना, सार्वजनिक हित के कार्य करना, कृषि और सिंचाई की उचित व्यवस्था करना होता था।

गुप्त काल में ग्रामीण प्रशासन के अर्न्तगत अनेकों नये लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं। गुप्त काल में गाँव की व्यवस्था में प्रशासनिक अधिकारी का योगदान न के बराबर था। गाँव का प्रबन्धन महत्तरों अर्थात् बड़े बुजुर्गों की सहायता से 'ग्राम प्रधान' करता था। यदा–कदा 'विषय' के प्रशासन में भी बुजुर्गों की सलाह ली जाती थी।

तत्कालीन शिला लेखों एंव अभिलेखों के विश्लेषण से प्रकट होता है कि गाँव या बीथी कहे जाने वाले कस्बों के प्रशासन में स्थानीय लोगों का भी योगदान होता था। उनकी अनुमति के बिना जमीन का क्रय–विक्रय का कोई सौदा नहीं किया जा सकता था। इस काल में गाँव की व्यवस्था निचले स्तर से की जाती थी, न कि ऊपर के स्तर से। स्पष्ट है कि इस काल में कारीगरों, व्यापारियों, महत्तरों (बुजुर्गों) का ग्रामीण तथा नगरीय प्रशासन में महत्त्वपूर्ण योगदान था।[15] गाँवों के बहुत अधिक सत्ता प्राप्त करने के कारण केन्द्रीय हस्तक्षेप नाममात्र का हो गया था। इस काल में विकेन्द्रीकरण बहुत अधिक प्रबल था। फाह्यान ने लिखा है : "भारतवर्ष के लोग सुखी एवं समृद्ध है.....। शासन प्रबन्ध सुव्यवस्थित है। शासन उदार तथा सौम्य है।"

जिस प्रकार भाषा का जन्म किसी समझौते के द्वारा नहीं हुआ और न ही इतिहास में कोई ऐसी तिथि सुनिश्चित है जहां से उस भाषा का प्रारम्भ हो गया है ठीक उसी प्रकार नगरीय निकायों का वर्तमान स्वरूप भी एक लम्बी विकास यात्रा का परिणाम है। स्वायत्त शासन की स्थापना के पीछे मुख्य रूप से दो उद्देश्य होते है, प्रथम : राजस्व की प्राप्ति एवं द्वितीय : प्रशासनिक दायित्वों में कमी। वर्तमान में स्वायत्त शासन मात्र राजस्व की प्राप्ति अथवा प्रशासनिक दायित्वों के निर्वहन का साधन मात्र नहीं हैं बल्कि यह आधुनिक लोकतान्त्रिक प्रणाली की नींव है। लोकतन्त्र का जन्म ही स्वायत्त शासन से होता है। नगरीय निकाय सफल प्रशासन के संचालन का एक साधन है। वर्तमान की सभी स्वायत्तशासी संस्थायें (नगर निगम, नगर परिषद, नगर पालिका बोर्ड, पंचायती राज संस्थायें) प्राचीन भारत की देन है। नगरीय–निकायों का वर्तमान स्वरूप प्राचीन भारत की विकेन्द्रीकृत व्यवस्था का ही विकसित स्वरूप है।

सन्दर्भ

1. योगेन्द्र कुमार शर्मा, भारतीय राजनीतिक विचारक : भाग – 1 प्राचीन एवं आधुनिक स्वतन्त्रता पूर्व (नई दिल्ली : कनिष्का

पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर – 2000) पृ. 370.
2. प्रेम कुमारी दीक्षित, रामायण में राज व्यवस्था (लखनऊ : अर्चना प्रकाशन – 1971), पृ. 115.
3. सुरेन्द्र कटारिया, ग्रामीण विकास एवं पंचायतीराज (जयपुर : आर.बी.एस.ए. पब्लिशर्स, 2003) पृ. 3.
4. प्रेम कुमारी दीक्षित, महाभारत में राज्य व्यवस्था (लखनऊ : अर्चना प्रकाशन – 1970), पृ. 245–249.
5. शारदा प्रसाद तिवारी, ऋषि गाथा (आगरा : बी.एस. शर्मा एण्ड ब्रदर्स, 2002), पृ. 366.
6. दण्डी, दशकुमारचरित्रम, उत्तर पीठ, 8.
7. योगेन्द्र कुमार शर्मा, उपरोक्त, पृ. 37–42.
8. पुखराज जैन, भारतीय राजनीतिक विचारक (आगरा : साहित्य भवन,1994) पृ.83.
9. योगेन्द्र कुमार शर्मा, उपरोक्त, पृ. 50.
10. आर. आर. रामशास्त्री, कौटिल्याज अर्थशास्त्र (मैसूर : प्रिंटर्स प्रेस, 1956), पृ. 45.
11. सुरेन्द्र कटारिया, उपरोक्त, पृ. 3.
12. आर. आर. रामशास्त्री, उपरोक्त, पृ.160
13. आर.पी. जोशी एवं अंरूणा भारद्वाज, भारत में स्थानीय प्रशासन, तृतीय संस्करण (जयपुर : शील सन्स, 2004).पृ. 15.
14. जवाहर लाल नेहरू, हिन्दुस्तान की कहानी (संक्षिप्त), 1989, पृ. 134–142.
15. बी.एल. फडिया, भारत में लोक प्रशासन, सातवां संस्करण, (आगरा : साहित्य भवन पब्लिकेशन, 2009) पृ. 9.